ध्यान दें:

3

सांख्य दर्शन में सृष्टि विचार

कहाँ से विचित्र रचनात्मक जगत की उत्पत्ति हुई है? यह जीव कौन है? इस प्रकार की जिज्ञासा ही अध्यात्मवाद का मूल है। इसलिए ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया है।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।

अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आ बभूव॥ इति।

अच्छे तरह सभी विषयों की चर्चा के लिए दर्शन प्रस्थानों को प्रस्ताव उत्पन्न हुआ। वस्तुतः सभी दर्शनों के सृष्टि के विषय में भिन्न-भिन्न मत है। अद्वैत वेदान्त के मत में अज्ञान ही प्रपञ्च सृष्टि का कारण है। न्याय-वैशेषिक के मत में नित्य परमाणु ही अदृष्ट होने के कारण द्वयणु आदि क्रम से जगत् का सर्जन करते हैं। इस प्रकार से सांख्य दर्शन का भी सृष्टि के विषय में अपना मत है। सांख्य के मत में प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से प्रकृति के गुणों में विसमता आ जाती है जिससे महत् तत्त्वादि क्रम से प्रपञ्च की सृष्टि होती है। इस पाठ में सांख्य शास्त्र की दृष्टि से सृष्टि तत्व का विचार किया जाएगा, तथा सभी सृष्टि पदार्थों के विषय में विस्तार पूर्वक आलोचनात्मक वर्णन किया जायेगा।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप सक्षम होंगे;

- सांख्य दर्शन के सृष्टितत्व के विषय का परिचय प्राप्त करने में;
- सांख्य दर्शन में सृष्टि के पदार्थों का परिचय प्राप्त करने में;
- सृष्टि के कारण क्या हैं इसका ज्ञान प्राप्त करने में;
- सृष्टि के प्रयोजन क्या हैं इसका ज्ञान प्राप्त करने में;
- सांख्य सम्मत सृष्टिक्रम का ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम होंगे;
- व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य तथा वैधर्म्य का संक्षेप में ज्ञान प्राप्त करने में;

पाठ-3

सांख्य दर्शन में सृष्टि विचार

ध्यान दें:

3.1) तीनों गुणों का परिणाम सृष्टि का कारण

प्रकृति तथा पुरुष ये दो तत्व सांख्य सिद्धान्त में स्वीकार किये गये हैं। इन का सद्भाव मान भी पूर्व में प्रतिपादित किया जा चुका है। अभी मूल प्रकृति से किस प्रकार से सृष्टि होती इसका प्रतिपादन किया जा रहा है। साम्यावस्था तथा वैषम्यावस्था ये दो अवस्था प्रधान मानी गई हैं। तीनों गुणों की जब साम्यावस्था रहती है, उस समय को प्रलय काल माना गया है। सृष्टिकाल के समय तीनों गुणों में विषमता उत्पन्न होती है। सांख्य शास्त्र में वस्तुतः तीनों गुणों की विषमता ही सृष्टि का बीज है। जिस प्रकार एक ही मेघ के जल से नारिकेलादि फलों के आधार की विविधता से उनमें मधुरादि (मीठे रस आदि) विचित्र की रचना होती है, उसी प्रकार एक प्रकृति है गुणों की विषमता के कारण विचित्र कार्य रचना को सम्पादित करती है, इस प्रकार का उनका मत है इसलिए कहा गया है

कारणमस्त्यव्यक्तं, प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत्प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्॥ इति। [सांख्यकारिका -१६]

श्लोकार्थ : त्रिगुणतः अर्थात् सत्वादि तीनों गुणों से, प्रवर्तते अर्थात् प्रवृत होते हैं, समुदयात् अर्थात् परस्पर मिश्रण से प्रवर्तित होते हैं, इस प्रकार से प्रधान की दो प्रकार की प्रवृत्ति होती है, सृष्टिकालीन तथा प्रलय कालीन। वहाँ सृष्टिकाल में प्रकृते के तीनों गुण मिलकर प्रवर्तित होते हैं। वे उस समय कुछ गुणभूत होते हैं कुछ प्रधानभूत होते हैं। इस प्रकार गोंण तथा मुख्य भावों के बिना अनेक पदार्थों के मिलित्वा प्रवृत्ति असम्भव होती है। प्रलयकाल में प्रधान के तीनों गुण परस्पर अलग होकर स्वातन्य से अन्योन्यगुणप्रधानभाव की उपेक्षा करके अपने-अपने स्वरूप में ही प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् अपने स्वरूप मात्र में ही स्थित रहते हैं। प्रतिगुणों के आश्रय विशेष से एक अव्यक्त से ही विचित्राकार्यों कि उत्पत्ति कही गयी है। एक गुण के ही भिन्न-भिन्न मात्रा में मिलन से एक ही प्रधान से नाना प्रकार के कार्यों की उत्पत्ति होती है।

एक दृष्टान्त है परिणामे सलिल (जल) के जैसे-जैसे जल एक ही नारियल, जामुन आदि में परिणाम के भेद से मधुर तिक्तवत् होता है उसी प्रकार प्रधान भी सहकारी भेदादि से विषम भाव रूप में प्रतिपादित होता है।

परिणाम ही गुण है, इसलिए ये परिणतिशीलता को प्राप्त किये बिना एक क्षण भी नहीं रुकते हैं। प्रकृति के दो प्रकार के परिणाम होते हैं। सदृश परिणाम तथा विसदृश परिणाम। प्रलयकाल के समय सत्वादि गुण सदृश परिणाम को प्राप्त करते हैं। उस समय सत्व स्वयं के लघुत्व रूप को लेकर ही प्रवर्तित होता है, न कि किसी भी अन्य गुण के साथ संयुक्त होकर विलक्षण तत्कार्य रूप में परिणित होता है। रजो गुण भई स्वयं का उपष्टम्भकत्वादि रूप को लेकर प्रवर्तित होता है। तमोगुण भी गुरुत्वादिरूप के साथ अनुरूप परिणाम में प्रवर्तित होता है। ये गुण अन्य किसी गुण के साथ के साथ युक्त होकर के उसके कार्य रूप में परिवर्तित नहीं होते हैं। सृष्टि के समय में प्रकृति के गुणों की साम्यावस्था अप्रच्युति रूप से विसदृश परिणाम को प्राप्त करती है। तब गुण के परस्पर गौण मुख्य भाव के समिश्रण से महतत्वादि रूप उत्पन्न होते हैं।

3.2) प्रधान-पुरुष संयोग सिद्धि

सांख्यशास्त्र में पुरुष ही दृष्टा अकर्ता तथा चेतन है। वह सृष्टि का कारण नहीं है। सृष्टि का कारण तो अचेतन और प्रधान ही है। अब प्रश्न होता है अचेतन के द्वारा सृष्टि की रचना उपयुक्त नहीं लगती है। क्योंकि कोई भी अचेतन पदार्थ संसार में कुछ भी सृजन करता हुआ दिखाई नहीं देता है। अतः

ध्यान दें:

अनुपपन्न अचेतन प्रधान का सृष्टि कर्तृत्व युक्ति संगत नहीं लगता है। तब कहते हैं कि अचेतन प्रधान भी पुरुष के सानिध्य से चेतनवत् हो जाता है। पुरुष का प्रतिबिम्ब जब प्रकृति में आता है तब जड प्रकृति भी चेतन के समान आचरण करती है। अयस्क मणि (चुम्बक) के सानिध्य से जैसे अचेतन लोहे की भी प्रवृति दिखाई देती है उसी प्रकार उदासीन पुरुष के सानिध्य से भी अचेतन प्रकृति प्रवृत्ति रूपी क्रिया को उत्पन्न करती है। अर्थात् पुरुष के सानिध्य से प्रकृति कर्तृत्व को प्राप्त करती है। परन्तु उसमें चेतनत्व नहीं रहता है, पुरुष में तो चेतनत्व रहता है, परन्तु उसमें क्रिया शक्ति नहीं रहती है इस कारण से पुरुष में कर्तृत्व भाव का अभाव रहता है। इस प्रकार चैतन्य भाव पुरुष का तथा कर्तृत्व भाव प्रधान का एक प्रकार से चैतन्य कर्तृत्त्व का भिन्नाधिकरण रूप में सिद्ध होता है। इसलिए सांख्यकारिका में काहा गया है-

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।

गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥ इति। [सांख्यकारिका-20]

चैतन्य तथा कर्तृत्व के भिन्नाधिकरण रूप में युक्ति पूर्वक सिद्धि होने के कारण से, उसके संयोग से चेतन के संयोग से लिङ्ग बुद्ध्यादिक अचेतन भी चेतनावत् चेतन ही होता है। तथा गुणकर्तृत्व भी अर्थात् बुद्धि पराग बुद्धि में प्रतिबिम्ब से उदासीन पुरुष भी कर्ता के जैसे हो जाता है, न कि वास्तविक कर्ता होता है। भ्रान्ति के कारण पुरुष अपने आप को आत्मा मान लेता है। उससे "कर्ता हूं इस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न होती है। और इस भ्रान्ति के कारण ही पुरुष सन्निधि तथा प्रकृति पुरुष संयोग होता है। तब प्रश्न करते हैं कि "यह पुरुष असङ्ग होता है" इस प्रकार के श्रुति वचनों से तथा चेतन के असङ्गत्व होने से यह संयोग कैसे होता है। तब कहते हैं कि पुरुष को जो कर्तृत्व धर्म होता है वह बुद्धि के उपराग के कारण होता है। अर्थात बुद्धि की जो चेतना होती है वह पुरुष सानिध्य के कारण होती है। यहाँ पर संयोग शब्द से 'पृथ्वी पर घड़ा ' इस प्रकार का संयोग ग्रहण नहीं करना है। अपि तु बिम्ब प्रतिबिम्बत्व भाव जानना चाहिए। जैसे जल तथा सूर्य का संयोग होता है उसी प्रकार परस्पर धर्मारोपवत् बुद्धि तथा पुरुष का संयोग होता है। जो इस प्रकार कपिल के सूत्र में कहा गया है - "उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात्" (1.164) इति।

इस प्रकार से पुरुष के सानिध्य से प्रकृति की तीनों गुण वाली साम्यावस्था युक्त प्रच्युति रूपा सृष्टि उत्पन्न होती है। यहाँ पर यह जानना चाहिए की प्रकृति तथा पुरुष का संयोग ही सृष्टि का निमित्तकारण है। तथा सृष्टि का उपादान कारण भी प्रकृति ही है।

3.3) सृष्टि का प्रयोजन

अद्वैतवेदान्तियों के मत में तो सृष्टि का कोई प्रयोजन ही नहीं है, लीला रूप ही परमेश्वर की जगत् की सृष्टि है।

जैसे प्रश्न करते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति का कोई प्रयोजन है क्या? तब कहते हैं पुरुष का मोक्ष तथा प्रधान का भोग ही सृष्टि का प्रयोजन है। इसलिए सांख्यकारिका में कहा गया है-

पुरुषस्य दर्शनार्थं केवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥ इति। [सांख्यकारिका-21]

उभयोः दोनों पुरुष तथा प्रधान का जो संयोग होता है वह दर्शन के लिए तथा केवल्य के लिए होता है। वहाँ प्रधान के द्वारा स्वयं के दर्शन के लिए तथा सुखदुःखाद्यात्मक-स्वस्वरूपानुभवरूपभोग के लिए पुरुष की अपेक्षा होती है। पुरुष के द्वारा स्व केवल्य, केवल्यकारण तथा विवेकज्ञान के लिए प्रधान की अपेक्षा होती है। यहाँ पर एक दृष्टान्त दिया जाता है पङ्ग्वन्धवत् (लंगड़े तथा अंधे के समान) जैसे एक लंगड़ा और एक अन्धा एक मार्ग में जा रहे हैं। किसी कारण से अपने बन्धुओं से बिछुड़ने

ध्यान दें:

के कारण दैव संयोग से दोनों मिल जाते हैं। लंगड़ा देख तो सकता है लेकिन चल नहीं सकाता उसी प्रकार अन्धा चल तो सकता है लेकिन देख नहीं सकता। तब अन्धा लङ्गड़े को अपने कन्धों पर बिठाकर पङ्गु के द्वारा बताए गये मार्ग से जाते हुए अपने इच्छित स्थान को प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार पुरुष में दर्शन शक्ति तो रहती तो परन्तु पङ्गुवत् क्रिया का अभाव रहता है, और प्रधान में क्रिया शक्ति तो रहती है परन्तु अन्धवत् दर्शन शक्ति का अभाव रहता है। तब जैसे गति शक्ति विहीन पङ्गु के द्वारा अभीष्टदेश की प्राप्ति के लिए गतिशक्तिमान अन्धे की अपेक्षा होती है उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। यहाँ पर पङ्गु यह उपमा निष्क्रिय पुरुष की है तथा अन्ध यह उपमा अचेतन प्रधान की है। जैसे ईप्सित स्थान की प्राप्ति के बाद पङ्गु तथा अन्धे अलग-अलग हो जाते हैं उसी प्रकार प्रधान भी पुरुष का मोक्ष कराकर निवृत हो जाता है तथा पुरुष भी प्रधान को देखकर केवल्य स्वरूप को प्राप्त करता है। उन दोनों का कृतार्थ होने पर विभाग हो जाता है।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. प्रधान की दो दशाएँ कौन-कौन सी हैं?
2. कब तीनों गुणों में वैषम्य होता है?
3. तीनों गुणों के वैषम्य से क्या उत्पन्न होता है?
4. एक प्रधान विचित्र कार्य रचना को सम्पादित करता है यहाँ पर सांख्य कारिका की कारिका कौन-सी है?
5. प्रलय काल के समय में गुणों का किस प्रकार से परिणाम होता है?
6. सांख्य के मत में सृष्टि का क्या प्रयोजन है?
7. प्रकृति पुरुष के संयोग से सृष्टि में यहाँ पर किन दो दृष्टान्तों को कारिका में दिया गया है।
8. पुरुष के सानिध्य से ही बुद्धि में कर्तृव होता है यह कपिल सूत्र कौन-सा है?

3.4) सृष्टि का क्रम

अस्तु तो पङ्ग्वन्धवत् रूप से प्रकृति तथा पुरुष का संयोग होता है तथा इस संयोग से क्या सिद्ध होता है तब कहते हैं "उसके द्वारा की गई सृष्टि"। अर्थ प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से ही सृष्टि बनती है। यहाँ उपादान कारण भी प्रकृति ही है। इसलिए सृष्टि के क्रम में कहा गया है कि

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडषकः।
तस्मादपि षोडषकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥ इति। [सांख्यकारिका 22]

प्रधान से महतत्व अर्थात् बुद्धि की उत्पत्ति होती है, महतत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है, उस अहङ्कार से सोलह गण उत्पन्न होते है। सोलह गण क्या-क्या हैं? तब कहते है ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ षोडश गण कहलाते हैं। उस षोडश गण से भी पाँच तन्मात्राओं की पाँच महाभूत आकाशादि की उत्पत्ति होती है।

प्रकृति

▼

महत्व

ध्यान दें:

▼

अहङ्कार

▼

मन चक्षु श्रोत्र जिह्वा नासिका त्वक् वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ

शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध (षोडषक गण)
↓ ↓ ↓ ↓ ↓
आकाश वायु तेज जल पृथिवी

शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होती है जो जिसमें शब्द गुण होता है, शब्दतन्मात्रा के स्पर्श तन्मात्रा से वायु की उत्पत्ति होती जिसके शब्द तथा स्पर्श ये दो गुण होते है। शब्दस्पर्शतन्मात्रा के साथ रूप तन्मात्रा से तेज की उत्पत्ति होती है जिसके शब्द स्पर्श तथा रूप गुण होते है। शब्दस्पर्शरूप तन्मात्रा के सहित रस तन्मात्रा से जल की उत्पत्ति होती है जिसके शब्द,स्पर्श,रूप तथा रस गुण होते हैं। शब्द,स्पर्श,रूप तथा रस मात्रा के सहित गन्ध तन्मात्रा से पृथिवी की उत्पत्ति होती है जिसके शब्द,स्पर्श,रूप,रस तथा गन्ध गुण होते हैं। पच्चीस तत्वों के मध्य पुरुष तथा प्रकृति का सृजन नहीं होता है। उन दोनों के स्वरूपों का पूर्व में विस्तार से परिचय दे दिया गया है। अभी प्रकृति से जिन तत्वों की सृष्टि हुई हे उनके विषयों का क्रम से आलोचन करेंगे।

3.5) महत्तत्त्व

प्रकृति के सात्विक अंश से जो तत्व सर्वप्रथम उत्पन्न होता है वह महत् तत्व कहलाता है। इसका ही नामान्त बुद्धितत्व होता है। सत्व गुण प्राधान्य से इसमें लघुत्व तथा प्रकाश रहता है, इसलिए सांख्यकारिका में कहा गया है।

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥ इति। [33]

"मेरे द्वारा यह किया गया" इस प्रकार के आकार का निश्चय ही अध्यवसाय कहलाता है। विषय को अधिकृत करके जो निश्चय किया जाता है वह अध्यवसाय कहलाता है।

अध्यवसायात्मिका ही बुद्धि का लक्षण है। इस लिए सांख्य शास्त्र में कहा गया है "अध्यवसायो बुद्धिः" (2.13) इति। संसार में सामान्य लोग जब किसी कर्म में प्रवृत्त होते हैं। तब उसके अन्तः करण में तीन वृत्तियाँ होती है,जैसे पहले आलोचन (वस्तु का ज्ञान) उससे "मैं अधिकारी हूँ" इस प्रकार का अभिमान, फिर उससे "मेरे द्वारा यह किया जाना चाहिए " यह अध्यवसाय (निश्चय ज्ञान)। इनमें जो तीसरी वृत्ति है जिसमें निश्चयात्मक ज्ञान होता है वह ही बुद्धि है। उस बुद्धि में चार सात्विक धर्म, चार तामस धर्म होते हैं। उसमें धर्म, ज्ञान, विराग, ऐश्वर्य, ये सात्विक धर्म होते हैं। तथा इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अविराग, अनैश्वर्य ये चार तामासिक धर्म होते हैं।

तब प्रश्न करते हैं कि अचेतन बुद्धि से किस प्रकार लोकवत् निश्चय सम्भव होता है। तब कहते हैं कि चैतन्य पुरुष के सानिध्य से, तथा चित्त मात्र पुरुष के बुद्धिरुपी अन्तःकरण वर्तित्व होने से। जैसे एक स्थान में स्थित स्फटिक तथा जपाकुसम पुष्प, वहाँ स्फटिक में जपाकुसम का लोहित्य आ जाता है, वैसे ही चित्त की सन्निधि से बुद्धि भी चेतनवत् निश्चय कारिणी हो जाती है।

ध्यान दें:

3.6) अहङ्कार

महत् तत्व से अहङ्कार तत्व उत्पन्न होता है। उसका लक्षण क्या है? तब सांख्यकारिका में कहते है

अभिमानोऽहंकारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकश्चैव॥ इति। [२४]

अभिमान ही अहङ्कार कहलाता है। "मैं यहाँ अधिकृत हूँ" "ये विषय मेरे लिए है" "मेरे अलावा और कोई अधिकृत है" "इसलिए मैं हूं" इस प्रकार का जो अभिमान है वह असाधारण व्यापार अहङ्कार कहलाता है। वह ही अहङ्कार में बुद्धि का यह अध्यवसाय होता है कि। "कर्तव्यमेतन्मया'' (मेरे द्वारा करना चाहिए) इति। उस अहङ्कार से दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है) इन्द्रियों का एकादश गण, ख) पाँच तन्मात्राएँ।

एक अहङ्कार से दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है इसका क्या कारण है तब कहते हैं-

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्॥ इति। [सांख्याकारिका-25]

सत्व गुण प्रधान जो अहङ्कार है वह वैकृत इस नाम से प्रसिद्ध है। उस सत्व गुण प्रधान वाले वैकृत अहङ्कार से एकादश गण अर्थात् एकादश इन्द्रियों कि उत्पत्ति होती है। तम प्रधान अहङ्कार से पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। रजो गुण से दोनों ग्यारह इन्द्रियों की तथा पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है।

अहङ्कार में ही तीनों गुण रहते हैं। सत्व, रज तथा तम। जब सत्वगुण से रज तथा तमो गुण का अभिभव होता है तब अहङ्कार की वैकृत् संज्ञा होती है। उस वैकृत् अहङ्कार से सत्वगुण की सहायता से ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। उनमें उच्च सत्वगुण प्रधान मन होता है। मध्यम सत्व प्रधान ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। निकृष्ट सत्व युक्त अहङ्कार से कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। ऐसा जानना चाहिए। जब तमो गुण से सत्व तथा रज का तिरस्कार होता है अहङ्कार की भूतादि संज्ञाएँ होती है। तमोगुण की अधिकता से तामस ये भी संज्ञा होती है। इस भूतादि तमोगुण के कारण उसके समान स्वभाव वाले होते हैं तथा एवं उनसे शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ उत्पन्न होती है। इस प्रकार से जब रजोगुण से सत्वरजो गुण का अभिभव होता है, तब अहङ्कार की तैजस संज्ञा होती है। उस तेजस अहङ्कार से ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। जब वैकृत अहङ्कार विकृत होकर ग्यारह इन्द्रियाँ को उत्पन्न करना चाहता है, तब वह निष्क्रिय होने के कारण स्वकार्य को करने में समर्थ नहीं होता है, इसलिए वह क्रिया स्वभाव वाले तेजस अहङ्कार की सहायता ग्रहण करता है। तथा तामस अहङ्कार भी निष्क्रिय होने से तन्मात्ररूप अपने कार्य को उत्पन्न करने में प्रवर्तित नहीं होता है वह भी तैजस अहङ्कार की सहायता ग्रहण करता है। इस प्रकार से वैकृत अहङ्कार से तथा भूतादि अहङ्कार से उन दोनों की सहायता से तैजस अहङ्कार दो प्रकार के कार्यों का कारण सिद्धि होती है।

3.7) इन्द्रियाँ

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, होती हैं। वैसे ही पाँच कर्मेन्द्रियाँ वाक्, हस्त, पैर, पायु, तथा उपुस्थ होती है। और इन दोनों प्रकार की इन्द्रियों के साथ मन ग्यारहवीं इन्द्रिय होती है। इन्द्रियाँ सात्विक अहङ्कार के द्वारा उत्पन्न होती हैं। अहङ्कार कार्यत्व तथा कारणत्व अलग ही होता है। इन्द्रिय अर्थात् इन्द्रिय की प्रत्यक्ष आत्मा के लिङ्ग का अनुमापक ही इन्द्रियाँ होती हैं। इसलिए निरुक्त व्याख्या में भगवद् दुर्गाचार्य ने कहा है कि- इन्द्रिय की आत्मा से जिसके द्वारा देखा जाता है, ग्रहण किया जाता

ध्यान दें:

है, अनुमान किया जाता है वहां आत्मा ही इस करण का कर्ता है। इन्द्रियाँ अकर्तृक करण नहीं होती है इन्द्रियाँ विषय ग्राहकत्व से ज्ञान के साधन होती हैं। इसलिए सांख्य कारिका में कहा गया है।

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षु:श्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहु:॥ इति। [26]

3.7.1) ज्ञानेन्द्रियाँ

श्रोत्र (कान), आँख, त्वचा, जिह्वा तथा नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा ये ज्ञान का साधन करने के कारण ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं। श्रवणादि कार्यों के द्वारा ये ज्ञान का साधन करती हैं। ज्ञान के लिए इन्द्रियाँ ही ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं। इसलिए कहा गया है-

एवं श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा।
पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहु: शास्त्रज्ञा हि विचक्षणा:॥ इति।

श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियों की पाँच वृत्तियाँ होती हैं। श्रोत्र का कार्य शब्द श्रवण, त्वचा का कार्य स्पर्श ग्रहण, चक्षु का कार्य रूप दर्शन, रसना का कार्य रस ग्रहण तथा घ्राण का कार्य गन्ध ग्रहण होता है। इनकी वृत्ति व्यापार कहलाती है। इसलिए अक्षपादसूत्र में कहा गया है- "गन्धरसरूपस्पर्शशब्दा: पृथिव्यादिगुणास्तदर्था:" इति। अत्र वात्स्यायनभाष्यम् - "पृथिव्यादीनां यथाविनियोगं गुणा इन्द्रियाणां यथाक्रमम् अर्था: विषया: इति"।। तथा चोक्तम् -

शब्द: स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धो ह्यनुक्रमात्।
बुद्धीन्द्रियाणां विषया: समाख्याता महर्षिभि:॥ इति।

3.7.2) कर्मेन्द्रियाँ

मुख, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। कर्म को करने में जो साधन रूप हैं वे कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। वचनादि कार्य के द्वारा क्रिया की निष्पत्ति होने के कारण इन्द्रियों का वह कार्य वाचकत्व कहलाता है। इस लिए कहा गया है-

हस्तपादं गुदोपस्थं जिह्वेन्द्रियमथापि वा।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चित:॥ इति।

यहाँ पर जिह्वा इन्द्रिय के पद से मुख का ग्रहण करना चाहिए। इन पाँच इन्द्रियों की पाँच वृत्तियाँ भी होती हैं। वो हैं मुख को बोलना तथा भोजन करना, हाथ को लेना और पैर की चलना, पायु का विसर्जन करना तथा उपस्थ का आनन्द प्रदान करना। अत: कहा गया है -"वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्" इति।

3.7.3) ज्ञानकर्मेन्द्रिय

मन दोनों प्रकार का होता है ज्ञानेद्रिय भी तथा कर्मेन्द्रिय भी। चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वागादि कर्मेन्द्रियाँ मन में अधिष्ठित होती हुई अपने विषयों में प्रवृत्त होती है, इस कारण से मन उभयात्मक होता है। ज्ञान तथा कर्म दोनों की साधक इन्द्रियाएँ ज्ञानकर्मेन्द्रियाँ कहलाती है और मन सभी इन्द्रियों का प्रवर्तक होता है। अत: कहा गया है

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञै: कर्मेन्द्रियमपि स्मृतम्।
मनोऽधिष्ठितमेवेदमिन्द्रियं यत्प्रवर्तते॥ इति।
एवम् अर्थात् ग्यारहवीं इन्द्रिय मन होती है।

ध्यान दें:

3.8) तन्मात्राएं तथा महाभूत

अहङ्कार से जो सोलह गण की उत्पत्ति होती है। उस गण में पाँच तन्मात्राएँ भी रहती हैं। वे तन्तमात्राएँ शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा, तथा गन्ध तन्मात्रा होती हैं। तन्मात्रा इस पद से पञ्चमहाभूतों की सूक्ष्मावस्था के रूप तथा गुण विविक्षित होते हैं। जैसे आकाश का गुण शब्द, वायु का स्पर्श, तेज का रूप, जल का रस और पृथिवी का गुण गन्ध होता है। इन शब्दादि तन्मात्राओं से पाँच महाभूत आकाशादि की उत्पत्ति होती है। इन पाँच महाभूतों के परस्पर समिश्रण से इस व्यवहारात्मक स्थूल जगत् की सृष्टि हुई है।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. षोडश गण किससे उत्पन्न होते हैं?

   (क) प्रकृति से (ख) महत् तत्त्व से (ग) अहङ्कार से (घ) पुरुष से

2. ज्ञानेन्द्रियाँ कितनी होती हैं?

3. कर्मेन्द्रियाँ कितनी होती हैं?

4. बुद्धि कौन-से स्वरूप वाली होती है?

5. अहङ्कार का क्या लक्षण है?

6. पाँच तन्मात्राएँ कौन-कौन सी हैं?

7. पाँच तन्मात्राएँ किससे उत्पन्न होती हैं?

   (क) प्रकृति से (ख) महत् तत्त्व से (ग) तम:प्रधान अहङ्कार से

   (घ) सत्त्वप्रधानात् अहङ्कार से

8. एकादश गण किससे उत्पन्न होते हैं?

   (क) प्रकृति से (ख) महत् तत्त्व से (ग) तम:प्रधान अहङ्कार से

   (घ) सत्त्वप्रधानात् अहङ्कार से

3.9) अष्ट प्रकृतियाँ

शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ, महत् (बुद्धि) मूलप्रकृति, तथा अहङ्कार ये आठ प्रकृति होती हैं। यहाँ पर प्रकृति इस पद से उपादान कारणों को समझना चाहिए। इनमें जो मूल प्रकृति अर्थात केवल प्रकृति है कोई उपादान कारण नहीं है। मूल प्रकृति नित्य है। जैसे अन्य सभी के स्वयं के उपादान कारण होते हैं, वैसे ही इनके भी उपादान कारण होते हैं। जैसे शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ आकाशादि पञ्चमहाभूतों के उपादान कारण है, उसी प्रकार कार्य अहङ्कार के उपादान कारण हैं। तथा अहङ्कार पाँच तन्मात्रा तथा ग्यारह इन्द्रियों का उपादान कारण है, कार्य महत्व के उपादान कारण है। महत् अहङ्कार तथा तथा कार्य प्रधान का उपादान कारण है।

ध्यान दें:

3.10) करण

महत्तत्व (बुद्धि), अहंकार के साथ चक्षु, त्वक्, रसना, नासिका और श्रोत्र ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; वाक्, पाणि, वाद, वायु और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं मन उभयात्मक इन्द्रिय है। इस प्रकार करण (इन्द्रियाँ) तेरह प्रकार की हैं। करण नाम है विशिष्ट कारण का। जिसकी अनुपस्थिति में कार्य की उत्पत्ति असंभव हो वह कारण होता है। यथा दण्ड के बिना घट की उत्पत्ति नहीं होती अत: दण्ड घट की उत्पत्ति का कारण है। वैय्याकरण क्रिया की निष्पत्ति में साक्षात् अव्यवधान से जो साधन होता है उसे कारण कहते हैं। वाक्यपदीय में कहा गया है-

क्रियाया: फलनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत! तदा स्मृतम्॥

क्रियते अनेन इति करणम्। अर्थात् जिससे कार्य की सिद्धि होती है वह करण है। बुद्धयादि के द्वारा ही कार्य सिद्ध होते हैं अत: वे करण पद के वाच्य हैं। इस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, अहंकार एवं बुद्धि ये तेरह करण कहलाते हैं।

3.11) अन्त:करण

मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा चित्त ये अन्त: करण की चार प्रकार की वृत्ति होती हैं। इनमें सङ्कल्पविकल्पात्मक मन होता है, बुद्धि निश्चयात्मिका होती है, 'मैं' इस पद के अभिमान वाला अहङ्कार होता है, स्मरण करने वाला चित्त होता है।

मन, बुद्धि तथा अहङ्कार के भेद से अन्त: करण तीन प्रकार का होता है। इनमें मन आदि तीनों शरीर की आभ्यन्तर वृत्ति होने के कारण अन्त: करण कहलाते हैं। जिसके द्वारा कर्म किये जाएँ वह करण कहलाता है। अन्दर अर्थात् शरीर में स्थित होते हुए जो अदृश्य होते हुए करण होते है वे अन्त: करण कहलाते है।

शरीर में स्थित पदार्थ सुखादि का जो साधन करते हैं वे करण होते है। संकल्पात्मक मन, अध्यवसायात्मिका बुद्धि तथा अभिमानात्मक अहङ्कार ये तीन लक्षण अन्त: करण के बताए गये हैं।

3.12) पञ्च वायु

बुद्धि, अहङ्कार तथा मन तथा तीनों अन्त: करण की जो सामान्य वृत्तियाँ हैं इनकी साधारणव्यापारभूत (क्रिया करवाने वाली) पाँच वायु होती है। वे हैं प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान। अत: सांख्य कारिका में कहा गया है

सामान्यकरणवृत्ति: प्राणाद्या वायव: पञ्च॥ [29]

तब प्रश्न करते है कि साधारण व्यापार क्या है? उत्तर जैसे एक सामान्य जाल रूपी पिंचरे को उड़ाने के लिए सभी कबूतरों के द्वारा एक साथ मिलक के जो व्यापार किया जाता है,वैसे ही शरीर में जीवन धारण हेतु प्राणादि का व्यापार होता है, वह अन्त: करण के साथ मिलकर साधारण व्यापार करते हैं। जैसे अनेक पक्षी एक साथ मिलकर व्यापार (क्रिया) करते हुए एक पिंजरे को चलाते है वैसे ही एक साथ मिलकर अनेक अन्त: करण एक शरीर को चलाते हैं। प्राणादि रूप वायु के संचार करने के कारण वायु कहलाते हैं, ये प्रसिद्ध वायु नहीं होते हैं। उनका शरीर अवस्थान रूपी भेद होता है। अवस्थान के भेद से वे पाँच प्रकार की होती है। उनमें प्राण- नासिका, हृदय,नाभि तथा पैर के अङ्गुष्ठ तक होता है,

ध्यान दें:

अपान- गर्दन के पीछे के भाग में, पैर के पिछले हिस्से में, पायु तथा उपस्थ के पास में रहता है, समान- नाभि में तथा शरीर की सन्धियों में, उदान- हृदय, कण्ठ,तालु, मूर्धा तथा भ्रू के मध्य में ओर व्यान त्वचा में रहता है। अतः कहा गया है-

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥ इति।

न केवल स्थान भेद से जीवन की वृत्तियाँ (पाँच) पाँच प्रकार की होती है अपितु व्यापार के भेद भी इनके पाँच प्रकार के होते है। जैसे- प्राण का कार्य शरीर को धारण करने के लिए अन्नादि को पचाना, अपान का कार्य मलमूत्रादि को नीचे ले जाना, समान का कार्य नाडियों में रस के पहुँचाना, उदान का कार्य रसादियों को ऊपर ले जाना तथा व्यान का कार्य शक्ति तथा कर्म का हेतु बनना है।

3.13) व्यक्त तथा अव्यक्त में साधर्म्य तथा वैधर्म्यविचार

पच्चीस तत्वों का यहाँ पर विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है। पच्चीस तत्वों में महत् तत्व से लेकर पञ्चमहाभूतों तक तेईस तत्वों का वर्णन किया गया है। प्रधान के लिए अव्यक्त पद प्रयुक्त किया गया है। उसी के ही प्रकृति, मूलप्रकृतिः, तथा कारण इस प्रकार अनेक नाम हुए हैं। सभी व्यक्त उसी अव्यक्त में स्थित हैं। अव्यक्त से ही व्यक्त तत्वों का आविर्भाव हुआ है। उन व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य तथा वैधर्म्य का अभी आलोचन किया जा रहा है। व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य का प्रतिपादन करने वाली कारिका यह है।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ इति। [10]

व्यक्त सभी तत्व (1) हेतुमद्, (2) अनित्य, (3) अव्यापि, (4) सक्रिय, (5) अनेक, (6) आश्रित, (7) लिङ्ग, (8) सावयव, तथा (9) परतन्त्र होते हैं तथा अव्यक्त ही अहेतुमत्, नित्यम्, सर्वव्यापि, अक्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव, स्वतन्त्र होता है। अब व्यक्त तथा अव्यक्त के वैधर्म्य का संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

1. जिसका उत्पत्ति तथा कारण होता है वह हेतुमद् कहलाता है। प्रधान से लेकर के हेतु के महतत्व से लेकर पञ्चमहाभूत पर्यन्त तेईस तत्व उत्पन्न होते हैं। इसलिए वे हेतुमान् कहे जाते हैं। नित्य होने के कारण प्रधान का कोई उत्पति कारण नही इसलिए यह अहेतुमान होता है।
2. व्यक्त भी अनित्य होता है। सांख्य शास्त्र में किसी पदार्थ के सम्पूर्ण रूप से ध्वंस होने का कोई भी कारण नही है इस कारण से यहाँ अनित्य पद का तिरोभाव हो जाता है। व्यक्त जिससे उत्पन्न हुआ है इस लिए ही उसमें अनित्यत्व धर्म रहता है। अकारणवान् होने के कारण यह नित्य है यही नित्य का लक्षण होता है। उसके विपरीत होने के कारण व्यक्त अनित्य कहलाता है। वह ऐसे मिट्टी से उत्पन्न घड़ा अनित्य दिखाई देता है। इसी प्रकार महदादि प्रधानों से उत्पन्न कारण की भी अनित्यता सिद्ध होती है। प्रधान की किसी से भी उत्पत्ति नहीं होने के कारण वह नित्य ही होता है।
3. व्यक्त अव्यापि होने के कारण सर्वगत नही है। जैसे प्रधान तथा पुरुष (सर्वगत) है लेकिन व्यक्त सर्वगत नहीं है। प्रकृति तो तेईस महदादि पदार्थों में व्याप्त रहती है। परन्तु महदादि प्रकृति नहीं होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अव्यक्त तथा प्रधान सर्वव्याप्तहोते है तथा व्यक्त (प्रकृति रहति अन्त तत्व) अव्यापित्व धर्म वाले होते है।
4. व्यक्त ही सक्रिय होता है (अर्थात क्रियाशील होता है)। संसरणकाल में (संसार में जन्म तथा मरण के समय) महदादि कार्य सूक्ष्मशरीर का आश्रय लेकर ससंरण करते हैं इसलिए सक्रिय कहलाते

ध्यान दें:

हैं। यहाँ पर क्रियामात्र की विवक्षा नहीं है, क्योंकि परिणाम में क्रियात्व आ जाने के कारण प्रधान में भी सक्रियत्व धर्म आ जाता। यहाँ पर क्रिया से तात्पर्य परिस्पन्दनादि क्रिया विशेष ही है। इसलिए प्रधान में परिस्पन्दनादि क्रिया के कारण ही वह निष्क्रिय रहता है।

5. व्यक्त अनेक तथा बहुत प्रकार का होता है। तेईस संख्या होने के कारण व्यक्त का अनेकत्व सिद्ध होता है। फिर भी अनेकत्व कथन से प्रति पुरुष तथा बुद्धि आदि मे भेद समझना चाहिए। अव्यक्तं प्रकृति तो एक ही है।

6. जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसके आश्रित रहता है। इसलिए बुद्धि प्रधान के आश्रित रहती है, अहङ्कार बुद्धि के आश्रित रहता है, इन्द्रियाँ तथा तन्मात्राएँ अहङ्कार के आश्रित रहती हैं, तथा पञ्च महाभूत तन्मात्राओं के आश्रित रहते हैं। अत: व्यक्त का वैशिष्ट्य आश्रितत्व होता है। कार्य तथा कारण के अभेद होने पर भी यहाँ उनके आश्रय तथा आश्रयी भाव को कहा जा रहा है जैसे 'इस वन में चन्दन के वृक्ष है' इस उदाहरण से अवगमन करना चाहिए। प्रधान भी किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है अत: वह अनाश्रित्व धर्म वाला है।

7. लिङ्ग (लय) होने से व्यक्त है। जो लीन हो जाता है वह लिङ्ग अर्थात् अनुमापक कहलाता है। प्रधान का लय अनुमापक होना ही व्यक्त है। व्यक्त के आश्रय से ही उसके कारणत्व के कारण प्रधान में लय हो जाता है। प्रधान में अनुमापकत्व होने के कारण वह अलिङ्गत्व धर्म वाला ही रहता है।

8. व्यक्त ही सावयव वाला होता है अर्थात् अवयवों के संयुत होता है। अवयव से तात्पर्य है दो पदार्थों के मिलन अथवा संयोग। महादादि व्यक्त को परस्पर संयोग संभव होता है इसलिए वे अवयव वाले कहलाते है। प्रकृति संयोग वाली नहीं होती है। तो कहते हैं कि सत्व रज तथा तम का संयोग तो प्रकृति में होता है, तब कहते हैं कि ऐसा नहीं है। अर्थात् अप्राप्ति पूर्वक प्राप्ति ही संयोग कहलाती है जैसे प्रधान में तो यह पहले से उपलब्ध रहते अत: पूर्व से ही होने के कारण अप्राप्ति पूर्वक प्राप्ति से इनका संयोग नहीं होता है। इसलिए प्रधान सावयव युक्त नहीं होता है।

9. व्यक्त ही परतन्त्र होता है। अर्थात् जो जो कारण होते हैं वे अपने कारण के परतन्त्र होते है यह नियम प्रचलित है। अत: कार्यत्व होने से व्यक्त परतन्त्र होते हैं। प्रकृति किसी का कार्य नही होने के कारण स्वतन्त्र ही रहती है।

इस प्रकार से व्यक्त तथा अव्यक्त के वैधर्म्य का संक्षेप मे आलोचन किया गया है। अब उन दोनों के साधर्म्य का संक्षेप में आलोचन प्रारम्भ करते हैं। व्यक्त तथा अव्यक्त की साधर्म्य प्रतिपादिका कारिका यह है-

त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥ इति। [11]

(1) त्रिगुणम्, (2) अविवेकि, (3) विषय:, (4) सामान्यम्, (5) अचेतनम्, (6) प्रसवधर्मि ये व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य कहे गये है।

1. सत्व, रज तथा तम की साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती है। तथा तीनों गुण वाली व प्रधान होती है। कारण के गुण ही कार्य में अनुवर्तन करते है इसलिए प्रकृति से उत्पन्न महदादि व्यक्त होते हुए भी त्रिगुणात्मक होते हैं। जैसे काले धागे का वस्त्र काला ही बनता है।

2. अविवेकित्व व्यक्त तथा अव्यक्त धर्म विशेष होता है। यहाँ पर अविवेकिता से तात्पर्य सम्भूयकारिता से (तत्वों के समूह) है। कोई एक तत्व अपने कार्य में पर्याप्त नहीं होता है बल्कि सम्भूय रूप में ही कार्य होता है इसलिए किसी एक से कुछ भी सम्भव नहीं होता है। अथवा

ध्यान दें:

प्रधान स्वयं व्यक्त नहीं होने के कारण भी अविवेकी है। महद् आदि तत्व भी प्रधान से विवेचित नहीं होने के कारण अविवेकी ही कहलाते हैं। वे गुण ये व्यक्त तथा ये अव्यक्त है इस प्रकार से विवेक नहीं कर सकते है इस कारण से व्यक्तादि अव्यक्त तथा अविवेकी होते है।

3. विषय इस पद से आन्तरिक विज्ञान प्रधानादि तत्वों का स्पष्टीकरण किया गया है, इस विषय पद का यहाँ पर अर्थ बाहरी भोग पदार्थ ही अङ्गीकृत करना चाहिए। प्रधान तो सुख दु:ख तथा मोहात्मकता के कारण सभी पुरुषों के द्वारा भोग्य होता है। इस प्रकार सभी व्यक्त त्रिगुणात्म तथा सुख दु:ख मोहात्मक होने के कारण सभी पुरुषों के द्वारा भोग्य है। जिससे व्यक्त तथा अव्यक्त का वैशिष्ट्य सिद्ध होता है।

4. प्रधानं ही सामान्य कहा जाता है। अथवा अनेक पुरुषों के द्वारा ग्रहण होने के कारण भी सामान्य कहा जाता है। जैसै घट पट आदि का अनेको के द्वारा ग्रहण होता है, जैसे नर्तकी के भ्रूलता भङ्ग आदि प्रत्यक्ष गोचर होते हैं। वैसे ही व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों भी बहुपुरुषग्राह्यत्व होने के कारण सामान्य कहे जाते हैं।

5. अव्यक्त प्रधान होता है तथा व्यक्त के सभी कार्य अचेतन होते है। चेतन तो केवल पुरुष ही होता है।

6. प्रसवधर्मित्व व्यक्त तथा अव्यक्त का अपर धर्म होता है। बुद्धि से अहङ्कार, उससे इन्द्रियाँ तथा तन्मात्राएँ, उनसे भूतों की उत्पत्ति होती है। तथा प्रधान से बुद्धि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार दोनों का प्रसवधर्मित्व सिद्ध होता है। प्रसवधर्मित्व का अर्थ परिणामित्व होता है।

इस प्रकार से व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य तथा वैधर्म्य का संक्षेप में निरूपण किया गया है।

पाठगत प्रश्न 3.3

1. अहङ्कार का उपादान कारण कौन-सा है?

   (क) प्रकृति (ख) महत् (ग) तन्मात्राएँ (घ) इन्द्रियाएं

2. सांख्य शास्त्र में कितने करण बताए गये हैं?

   (क) दश (ख) एकादश (ग) द्वादश (घ) त्रयोदश

3. सांख्यशास्त्र में कितने अन्त: करण है?

   (क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) ग्यारह

4. पाँच वायु कौन-कौन से है?

5. व्यक्त तथा अव्यक्त के कितने वैधर्म्य सांख्य कारिका में बताए गये हैं?

   (क) नौ (ख) आठ (ग) पाँच (घ) ग्यारह

6. व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य कौन-कौन से हैं?

पाठ सार

प्रत्येक दर्शन का सृष्टि के विषय में स्वयं का अलग अलग मत। सांख्य शास्त्र मे प्रकृति पुरुष का संयोग ही सृष्टि का कारण है। संयोग से यहाँ पर घट तथा पट की तरह साक्षात सम्बन्ध जानना चाहिए,

ध्यान दें:

तथा साथ में ही दर्पण में प्रतिबिम्बित मुख के समान बिम्ब प्रतिबिम्ब सम्बन्ध भी जानना चाहिए। पुरुष के सानिध्य से प्रकृति में गुणों की परस्पर विषमता उत्पन्न होती है, जिससे महतत्वादि क्रम से स्थूलभूत जगत् उत्पन्न होता है। इस मत में सृष्टि के कुछ उद्देश्य होते है। जैसे यह परार्थ प्रकृति की प्रवृत्ति प्रकृति के भोगसाधिका तथा पुरुष की केवल्य साधिका होती है। प्रकृति पुरुष का संयोग सृष्टि का निमित्त कारण है तथा उपादान कारण तो केवल मूलप्रकृति ही है। मूलप्रकृति से अध्यवसायात्म महत् तत्व तथा उससे अभिमानात्मक अहङ्कार उत्पन्न होता है, उस अहङ्कार से शब्द, स्पर्श, रूप, रसगन्ध ये पाँच तन्मात्राएँ तथा संकल्प विकल्पात्मक मन पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं। पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान यह पाँच वायु होते हैं। ये पाँच वायु बुद्धि अहङ्कार तथा मनरूप अन्तः करण के सामान्य व्यापार कारक होते हैं। इसी प्रकार से सांख्य शास्त्र में सृष्टि का क्रम दिया गया है। यहाँ प्रधान ही केवल अव्यक्त कहलाता है। अन्य सभी उससे उत्पन्न तत्व व्यक्त कहलाते हैं। उन दोनों व्यक्त तथा अव्यक्त में साधर्म्य तथा वैधर्म्य रहता है। अतः कहा गया है त्रिगुण, अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन, प्रसवधर्मि ये व्यक्ताव्यक्त के साधर्म्य होते हैं। हेतुमत्, अनित्यम्, अव्यापि, सक्रियम्, अनेकम्, आश्रितम्, लिङ्गम्, सावयमम्, परतन्त्रम्, ये व्यक्त तथा अव्यक्त के वैधर्म्य होते है।

पाठान्त प्रश्न

1. त्रिगुण परिणाम ही सृष्टि का कारण है इस विषय पर लघु टिप्पणी लिखिए ।
2. सांख्य शास्त्र के अनुसार सृष्टि के क्रम का वर्णन कीजिए।
3. सृष्टि का क्या प्रयोजन है? यहाँ पर सांख्यमत का आश्रय लेकर आलोचना कीजिए।
4. प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से किस प्रकार से सृष्टि उत्पन्न होती है विचार कीजिए।
5. इन्द्रियों का विस्तार से परिचय दीजिए।
6. पाँच वायुओं के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए
7. व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य के विषय में लघुटिप्पणी लिखिए।
8. व्यक्त तथा अव्यक्त के वैधर्म्य के विषय में एक लघु टिप्पणी लिखिए।
9. सांख्यशास्त्र के अनुसार अहङ्कार का परिचय दीजिए।
10. सांख्यशास्त्र के अनुसार महत् तत्व का परिचय दीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 3.1

1. प्रधान की साम्यावस्था तथा वैषम्यावस्था इस प्रकाश से दो दशाएँ होती हैं।
2. सृष्टिकाल में
3. पुरुष की सन्निधि से प्रकृति के तीनों गुणों मे विषमता आ जाती है।
4. कारणमस्त्यव्यक्त प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च। परिणामतः सलिलवत्प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्।।
5. सदृशपरिणाम

ध्यान दें:

6. पुरुष का मोक्ष तथा भोग, ये दोनों ही प्रकृति का सृष्टि करने का प्रयोजन सांख्यशास्त्र में दिया गया है।
7. लंगड़ा तथा अंधा
8. "उपरागात् कर्तृत्व से तथा चित् सानिध्य से"

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 3.2

1. ग) अहङ्कारात्
2. पाँचज्ञानेन्द्रियाएँ है कान, त्वचा, आँख, नाक, जीभ
3. पाँच कर्मेन्द्रियाएँ है मुख, हाथ, पैर, गुह्येन्द्रि, तथा उपस्थ।
4. बुद्धि अध्यवसायात्मिका होती है।
5. अभिमान अहङ्कार का लक्षण होता है 'अभिमानोऽहङ्कारः'
6. शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध पाँच तन्मात्राएं होती है।
7. (ग) तम प्रधान अहङ्कार से
8. (घ) सत्वप्रधान अहङ्कार से

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 3.3

1. (ख) महत्
2. (घ) तेरह
3. (क) तीन
4. प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ये पाँच वायु होती है।
5. क) नो
6. तीनों गुण, अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन, प्रसवधर्मी, ये व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य होते है।